बम्बई के वातावरण में इतनी अधिक उत्तेजना थी कि लोकमान्य तिलक को जेल से न्यायालय में लाना-ले जाना आफतजदा हो गया था। सरकार को लगा कि बन्द गाड़ी में लाने-ले जाने से दंगे भड़क सकते हैं और स्थिति अत्यन्त नाजुक हो जाएगी। अतएव मुकद्दमे की सुनवाई के दौरान लोकमान्य तिलक को उच्च न्यायालय में ही दूसरी मंजिल पर एक कमरे में रखा गया। वहाँ एक पुलिस सार्जण्ट के कड़े पहरे में तिलक जी अपने बचाव की तैयारी करने लगे।

इधर बम्बई में सरकार ने कड़ा बन्दोबस्त कर लिया। पुलिस-आयुक्त ने निषेधाज्ञा लागू कर दी। मिल-मजदूरों के नेताओं को बुलाकर उन्हें आगाह कर दिया गया। पुलिस-आयुक्त ने मिलमालिकों से मुलाकात की और मजदूरों को हड़ताल और प्रदर्शन करने से रोकने की हिदायत दी।

स्वयं गवर्नर साहब ने फिरोजशाह मेहता को सलाह दी कि वे तिलक की भर्त्सना करने की दृष्टि से एक विज्ञप्ति जारी करें।

इस पर फिरोजशाह मेहता गुर्राये, ''मिस्टर तिलक के विचार कैसे भी क्यों न हों, उनके लिए तो मैं आज देहदण्ड भी स्वीकार कर सकता हूँ। मिस्टर तिलक ईमानदार हैं और सच्चे देशभक्त हैं। मुझसे उनकी भर्त्सना नहीं होगी।''

गवर्नर साहब ने भर्त्सना-विज्ञप्ति की आवश्यकता फिर एक बार प्रतिपादित की। इस पर फिरोजशाह मेहता ने निर्णायक स्वर में कहा, ''यह मुझसे कदापि नहीं होगा।''

नरमपन्थी नेता तो तिलक से सहमे-सहमे ही रहते थे। वे सरकार को यह जतलाने की पूरी कोशिश कर रहे थे कि उनके मन में तिलक के प्रति तनिक भी हमदर्दी नहीं है।

13 जुलाई को सुनवाई होनेवाली थी। उस दिन स्थिति अत्यन्त तनावपूर्ण थी। मिलों वाले इलाके में उस दिन नॉर्दम्प्टनशायर रेजिमेण्ट के जवान गश्त लगा रहे थे। लेकिन उनकी धमकियों की परवाह किये बिना कई कामगार काम पर नहीं गये। बल्कि उनके झुण्ड-पर-झुण्ड फोर्ट इलाके की ओर जाने लगे। ग्रीव्ज कॉटन कम्पनी के मिलों के सामने थोड़ी-सी वारदातें हुईं तो थल-सेना की एक टुकड़ी वहाँ भेजनी पड़ी। लेकिन वहाँ कोई दंगा नहीं हुआ और लोग तितर-बितर हो गये।

उस दिन शहर के बाजार बन्द रहे। स्कूलों-कॉलेजों के छात्रों ने भी अन्यान्य तरीकों से असन्तोष व्यक्त किया। कई छात्र तो अपनी कक्षा से गैरहाजिर रहे और उन्हें उच्च न्यायालय में देखा गया।

उच्च न्यायालय के चारों ओर भीड़ उमड़ रही थी। शाम को न्यायालय बरखास्त होने के समय तो यह भीड़ और भी बढ़ गयी। उसमें छात्र, मजदूर, गुमाश्ता, पाव-रोटीवाले, खोमचेवाले, ठेलेवाले तथा देहाती आदि लोग शामिल थे। हिन्दू, ईसाई, पारसी, मुसलमान—सभी जातियों के लोग वहाँ मौजूद थे।

भीड़ को नियन्त्रित करने के लिए पुलिस और घुड़सवार सैनिक तैयार खड़े थे। बीच-बीच में थोड़ा-सा आगे बढ़कर वे भीड़ को एक विशिष्ट सीमा पर ही रोक रहे थे।

ऐसी तनावपूर्ण स्थिति में मुकदमे की सुनवाई शुरू हुई। मुकदमे का फैसला सुनाने के लिए विशेष ज्यूरी की नियुक्ति हुई। लोकमान्य तिलक की ओर से बैरिस्टर बैप्टिस्ट ने इस बात पर विरोध प्रकट किया था। क्योंकि विशेष ज्यूरी अक्सर यूरोपीय ही होते थे। वे मराठी नहीं जानते थे। और मुकदमा तो मराठी 'केसरी' में छपे लेख के सिलसिले में चलाया जा रहा था। ऐसे मुकदमों में यूरोपीय ज्यूरियों का झुकाव अक्सर मुजरिम के विरोध में ही होना स्वाभाविक था। लेकिन जस्टिस दावर ने यह माँग नामंजूर कर दी। उन्होंने आश्वस्त तो किया था कि ज्यूरी पद के लिए कई एतद्देशियों को भी आमन्त्रित किया जाएगा। लेकिन अन्ततः नियुक्त ज्यूरियों में सात यूरोपीय और दो पारसी थे। इस प्रकार लोकमान्य तिलक को दोषी करार देने का पूरा बन्दोबस्त उन्होंने कर रखा था।

इन ज्यूरियों के सामने मुकदमे की कार्रवाई शुरू हुई। लोकमान्य तिलक खुद ही अपना बचाव कर रहे थे। दादासाहब खापर्डे, नरसोपन्त केलकर, दादासाहब करन्दीकर, जोजफ बाप्टिस्ट, माधवराव बोडस और बापूसाहब गाँधी आदि वकील उनकी सहायता कर रहे थे।

सबसे पहले सरकार की ओर से आरोप-पत्र पेश किया गया। उसके बाद गवाहियाँ, सबूत, बयान आदि का दौर विधिवत् शुरू हुआ। पहले गवाह थे असिस्टेण्ट ओरिएण्टल ट्रांसलेटर भास्कर विष्णु जोशी। वे किसी जमाने में लोकमान्य तिलक के छात्र रह चुके थे। लोकमान्य तिलक ने उनसे इतनी कड़ी जिरह की कि इससे पहले शायद ही उन्होंने अपने किसी छात्र की ऐसी अग्नि-परीक्षा ली हो। न्यायालय का समय समाप्त हो गया लेकिन जिरह अभी भी जारी थी।

उस रात बेचारे जोशी चैन से सो नहीं पाये। वे मानो पूरी तरह से टूट चुके थे। एक मामूली से इनसान के सामने नैतिक समस्या मुँह बाये खड़ी थी। उन्हें मन-ही-मन लग रहा था कि उनके हाथ से कहीं कोई गलती जरूर हुई है।

लोकमान्य उस रात अलस्सुबह तक सो नहीं पाये। दिन भर की थकान भूलकर वे अपने बचाव की तैयारी करने में ही लगे हुए थे। टेबल पर रख रखे ग्रन्थों और रिपोर्टों के ढेर में से एक-एक किताब उठाकर उसे उलट-पुलटकर देखना और यथावश्यक जगह निशान रखकर उसे अलग रख देना— यही क्रम रात भर चलता रहा।

अत्यन्त विचारमग्न अवस्था में वे उस कमरे में चक्कर लगा रहे थे। पूरे शहर में सन्नाटा था और न्यायालय की इमारत में भी वीरानगी ही थी। बाहर घटाटोप अँधेरा तथा जुलाई माह की मूसलाधार वर्षा। इसलिए बाहर की बम्बई से उनका रिश्ता जैसे

टूट चुका था। जैसे किसी बियाबान जंगल में बनी हुई एकाकी वास्तु हो यह, ऊँची छत वाले उस कमरे में फैली रोशनी उन्हें अपर्याप्त और उदास-सी लग रही थी। इस वजह से वातावरण और भी भयावह लग रहा था।

लेकिन इस उदास, वीरान, एकाकी, भयावह वातावरण का बलवन्तराव पर तनिक भी असर नहीं हुआ था। जेल की कोठरी में, असहाय स्थिति में सीखचों के पीछे पड़े रहने का कोई भी मलाल या शिकन उनके चेहरे पर नहीं थी। बन्द कमरे में चक्कर लगाने के दौरान भी वही बन्दिस्त सामर्थ्य व्यक्त हो रहा था। उनके चेहरे पर वही सात्त्विक ओजस्विता थी। उनकी थकी-हारी आँखों में भी वही ओज बरकरार था। वे मुक्त थे, आजाद थे। अपनी आन्तरिक शक्ति के बल पर उन्होंने यह आजादी प्राप्त कर ली थी। यह आजादी उनसे कोई भी नहीं छीन सकता था।

उन पर चौकीदारी करने वाला गोरा सार्जेण्ट थककर ऊब गया था। उसकी पलकें भारी हो रही थीं। टाँगों में बल पड़ने लगे थे। वह तो तिलक के सो जाने की फिराक में था, ताकि वह भी उनके बाद आराम से सो सके। लेकिन बलवन्तराव थे कि अत्यन्त एकाग्रता से अपना काम करने में लगे हुए थे। इसी बीच रात का डेढ़ बज गया।

आखिर उस सार्जेण्ट से रहा नहीं गया। उसने साहस बटोरकर कहा, "रात काफी बीत गयी है महाशय, क्या आप अब भी आराम करना नहीं चाहेंगे?"

बलवन्तराव ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा और उसकी परेशानी वे भाँप गये। उन्होंने पूछा, "क्यों? आपको नींद आ रही है क्या? तो आप निश्चिन्त होकर सो जाइए। मैं यहाँ से भागकर कहीं नहीं जाऊँगा।"

सार्जेण्ट को इसी की उम्मीद थी। बलवन्तराव के आश्वस्त किये जाने के बाद वह सो गया।

चक्कर लगाने का बलवन्तराव का क्रम फिर से शुरू हुआ। फिर से किताबें उलट-पुलटकर निशान रखने का सिलसिला भी चलता रहा।

दरअसल मुकदमे का फैसला क्या होने वाला है, यह तो मालूम ही था। लेकिन सवाल यह नहीं था कि फैसला किसके पक्ष में होता है या सज़ा क्या मिलती है। सवाल तो बुनियादी उसूलों का था। राजद्रोह किसे कहा जाए, वह कहाँ से शुरू होता है और कहाँ खत्म होता है, इसकी कोई-न-कोई सीमारेखा तो तय होनी ही चाहिए थी। अखबारों की आजादी पर कहाँ और कितना अंकुश लगाया जाए, ज्यूरियों के उत्तरदायित्व और कर्तव्यों का बँटवारा तो हो ही जाना चाहिए था। इसके बाद ही हिन्दुस्तान के नागरिकों की खासकर पत्रकारों की आजादी और अधिकारों की सीमारेखा निर्धारित हो सकती थी। और सीमित आजादी ही सही, हिन्दुस्तानियों को वह मयस्सर हो सकती थी। बल्कि इसके आधार पर अधिक आजादी प्राप्त करने के लिए लड़ा जा सकता था। हिन्दुस्तान में संसद तो नहीं थी, पर कानूनी राज था। स्वतन्त्र

न्यायालय थे। अत: अपने अधिकारों के लिए लड़ने हेतु यही तो एक मैदान था। खुद पर चल रहे मुकदमे के जरिये बलवन्तराव हिन्दुस्तानियों की ओर से इसी न्यायालय में लड़ने वाले थे। सम्भवतया उनके राजनीतिक जीवन का यह आखिरी पड़ाव था। हो सकता था, कि इससे कुछ हासिल भी न हो। लेकिन परिणामों की चिन्ता किये बिना वे अपनी समूची ताकत को दाँव पर लगाकर पुरजोर कोशिश करने वाले थे। कम-से-कम इतनी स्थितप्रज्ञता तो उनमें आ गयी थी।

बावन वर्ष की उम्र में बलवन्तराव का स्वास्थ्य कुछ डाँवाडोल ही चल रहा था। और एक दिन पहले ही न्यायालय में मुकदमे का काम चलाकर वे बुरी तरह से थक गये थे। फिर भी प्रात: चार बजे तक पूरी एकाग्रता से वे सारी तैयारी करते रहे।

उसके बाद उन्होंने उस सार्जेण्ट को जगाया और कहा, ''मैं अपना काम समाप्त कर चुका हूँ। अब मैं थोड़ा-सा विश्राम करना चाहता हूँ। आपकी नींद तो पूरी हो गयी न?''

वह सार्जेण्ट हड़बड़ाकर उठ बैठा और अपनी वरदी ठीक-ठाक करते हुए उसने बलवन्तराव के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त किया।

बलवन्तराव जमीन पर लेटकर गहरी नींद सो गये। वे खर्राटे भर रहे थे।

15 जुलाई को दोपहर चार बजे लोकमान्य तिलक ने अपना बचाव-वक्तव्य शुरू किया और पूरे साढ़े चार दिनों तक वह जारी रहा।

राजद्रोह क्या है, अखबारी पत्रकारों की सीमाएँ क्या हैं, ज्यूरी के अधिकार क्या हैं आदि कई मामलों पर व्यापक ऊहापोह उन्होंने अपने वक्तव्य में किया। केवल अपने बचाव के लिए नहीं, बल्कि इस देश के छापाखानों की आजादी की रक्षा के लिए वे यह वक्तव्य दे रहे थे। अपने वक्तव्य के अन्त में उन्होंने कहा, ''एक ओर शक्तिसम्पन्न नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) और दूसरी ओर जनता के बीच यह जोरदार लड़ाई शुरू हो गयी है। इस संघर्ष में मुझे आपके सहयोग की आवश्यकता है; मेरी व्यक्तिगत भलाई के लिए नहीं, बल्कि समूचे देश की भलाई के लिए। मेरी उम्र तो अब ढल रही है। बहुत थोड़ी जिन्दगी बची है मेरी। लेकिन आगे आने वाली पीढ़ियाँ आपके निर्णय के प्रति आस लगाये बैठी हैं। आपके निर्णय का औचित्य या अनुपयोगिता का निर्धारण वे ही करेंगी। यह निर्णय हिन्दुस्तान के अखबारी इतिहास का उल्लेखनीय अंग बननेवाला है...मैं फिर एक बार आपसे अर्ज कर रहा हूँ कि इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है; बल्कि इन उदात्त और पवित्र उसूलों की रक्षा के लिए मैं यह सब कर रहा हूँ। मुझे पूरी उम्मीद है कि जिस भगवान के सामने खड़े होकर एक-न-एक दिन अपनी जिन्दगी का लेखा-जोखा आपको प्रस्तुत करना होगा, वही भगवान इस मुकदमे में उत्पन्न समस्याओं के सिलसिले में समुचित निर्णय लेने में आपकी सहायता अवश्य करेगा।''

अपना प्रदीर्घ वक्तव्य पूरा कर लोकमान्य तिलक बैठ गये। अब उनके निश्चयी

किन्तु क्लान्त चेहरे पर एक शान्त सन्तुष्टि झलक रही थी। उन्होंने अपना कर्तव्य निभाया था। इसके परिणामों की उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं थी।

उनके बाद एडवोकेट जनरल ब्रैन्सन का वक्तव्य प्रारम्भ हुआ। लेकिन वह खत्म होने से पहले ही न्यायालय का समय पूरा हो गया। फिर भी जस्टिस दावर चाहते थे कि मुकदमा उसी दिन खत्म कर दिया जाए। इसीलिए उन्होंने एडवोकेट जनरल को अपना वक्तव्य पूरा करने के लिए पर्याप्त समय दिया। उनका वक्तव्य समाप्त होते-होते न्यायालय के उस हाल में अँधेरा घिर आया था। इनसानी परछाइयाँ धुँधलाती जा रही थीं। अँधेरा सभी को लीलने चला था।

जस्टिस दावर ने न्यायालय में बत्तियाँ जलाने का आदेश दिया और दीये की रोशनी में ज्यूरियों को मुकदमे की विषय-वस्तु से अवगत कराया। ऊँची छतवाले उस हाल में बत्तियों की वह रोशनी नाकाफी और मायूस-सी लग रही थी।

रात आठ बजकर तीन मिनट पर ज्यूरी के सदस्य अपना निर्णय लेने के लिए विशेष कक्ष में गये और जस्टिस दावर अपने चेम्बर में। वहाँ गवर्नर जनरल लॉर्ड मिण्टो का तार उनका इन्तजार कर रहा था। उन्होंने मुकदमे का फैसला जानना चाहा था। जस्टिस दावर ने उसका जवाब भेजा, ''डिफेंस ग्रेव। डिपेण्डिंग ज्यूरी।''

जस्टिस दावर न्यायालय से जा चुके थे। लेकिन दर्शक अपने स्थान से चिपके हुए थे। सभी लोगों को फैसले की उत्कण्ठा थी। गैस-बत्ती की अपर्याप्त रोशनी में साँस थामकर वे लोग फैसले का इन्तजार कर रहे थे।

बाहर वर्षा हो रही थी, अँधेरा हो गया था और अँधेरे की परिधि में विशाल जन-समूह न्यायालय के बाहर अधीर होकर खड़ा था। उत्कण्ठा, खीज, असहायता, आशा, निराशा, कृतज्ञता, प्रेम, भक्ति आदि कई तरह के मनोभावों का तूफान उसके दिलों में उमड़ रहा था। इतनी अधिक भीड़ होने के बावजूद कोई हल्ला-गुल्ला नहीं था। एकाध गँडेरीवाला कमाई करने के उद्देश्य से वहाँ आया और 'गँडेऽऽरी' कहकर चिल्लाने लगा। लोगों ने उसे तुरन्त चुप कराया और वहाँ से चले जाने को कहा। उसके बाद देर तक उसी चिर-प्रतीक्षित फैसले की आहट पाने के लिए वे लोग सोत्साह बैठे रहे।

इस भीड़ के सामने घुड़सवार पुलिस के जवान खड़े थे। चारों ओर पुलिस बन्दोबस्त अत्यन्त तगड़ा था। किसी भी क्षण भगदड़ मच सकती थी। इसी अनहोनी को नियन्त्रित करने के लिए वे भीड़ पर नजर रखे हुए थे। अँधेरे से सराबोर उस माहौल में एक तरह का विस्फोटक तनाव कूट-कूटकर भरा हुआ था। और इस पूरे परिदृश्य पर जुलाई माह की वर्षा अपनी घटा दिखा रही थी।

ज्यूरी निर्णय लेने में व्यस्त थे तो लोकमान्य तिलक और उनके एकनिष्ठ सहयोगी वहाँ इकट्ठा हो गये। दादासाहब ने बलवन्तराव के लिए चाय मँगवायी।

बलवन्तराव ने कहा, ''चाय तो हम सभी पिएँगे।''

धोंडोपन्त चाय की व्यवस्था के लिए तुरन्त चले गये। तनाव की यह स्थिति उनके लिए असहनीय होती जा रही थी। बलवन्तराव पर आ रही विपदाओं की कल्पनाओं से ही वे इतने मायूस हो रहे थे कि ऐसे किसी छोटे-मोटे काम में वे अपने दिल को व्यस्त रखना चाहता थे।

आतुर, आशंका से सराबोर निगाहों से बलवन्तराव की ओर देखते हुए धोंडोपन्त ने चाय की प्याली उनके हाथ में थमायी। प्याली देते समय उनके हाथ काँप रहे थे। प्याली-प्लेट की लड़खड़ाहट से यह जाहिर हो रहा था।

बलवन्तराव ने उनकी ओर एक बार गौर से देखा। धोंडोपन्त बरसों से सम्पूर्ण श्रद्धा, ईमानदारी और समर्पण-भाव से उनकी सेवा करते आ रहे थे। उनका हर तरह का काम पूरी लगन से किया था। संकट की कई घड़ियों में उन्होंने बलवन्तराव को पूरा सहयोग दिया और कानों-कान खबर भी नहीं होने दी। यहाँ तक कि बलवन्तराव के जूते उठाकर पहनने के लिए उनके सामने पेश करने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ करता था।

बरसों पुरानी यह नजदीकी अब समाप्त होने वाली थी। शायद इसके बाद उनसे मुलाकात करना भी सम्भव न हो। एकाएक बलवन्तराव को सत्यभामाबाई का परिश्रमी किन्तु मायूस चेहरा याद आया। उनके दिल की छटपटाहट और तल्खी का तीव्र एहसास उन्हें हुआ। लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने दिल की इस भावुकता को झटककर अलग कर दिया।

वहाँ एकत्र सभी लोग मानो हतोत्साहित हो रहे थे। सबके मुँह सिले हुए थे। एक सहमा-सहमा-सा सन्नाटा दबे-दबे-से अन्दाज में वहाँ व्याप्त था।

बलवन्तराव ने उन सभी लोगों से चाय पीने का अनुरोध किया और खुद भी चाय पीने लगे।

दादासाहब ने यों ही कोई हल्की-फुल्की बातचीत शुरू करते हुए बलवन्तराव के मानसिक तनाव को कम करने का प्रयास किया, लेकिन इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली।

बलवन्तराव कुछ देर तक तो अपने ही विचारों में खो गये थे। फिर अचानक सब लोगों की ओर देखकर वे हँस दिये और उन्होंने दादासाहब से कहा, "दादा साहब! आज का रंग कुछ अलग ही नजर आ रहा है। काला पानी की सम्भावना लगती है। आप लोगों के साथ यह आखिरी चाय समझ लीजिए।"

धोंडोपन्त को काटो तो खून नहीं। वे एकाएक सिसक पड़े। उन्होंने चाय की प्याली नीचे रखी और उत्तरीय से मुँह छुपा लिया। सभी के चेहरे मुरझा गये। दादासाहब ने बलवन्तराव की बाँह कसकर पकड़ ली और बाद में अपना हाथ हटा लिया। उन्हें लगा कि उनसे अवश्य कुछ गलती हो गयी है।

बलवन्तराव ने कहा, "इस सबको मैंने जान-बूझकर न्यौता दिया है। कभी-न-कभी तो यह होना ही था। इसमें दु:ख की भला क्या बात है! बल्कि इतने वर्ष मैं निर्धारित काम कर पाया, यह मेरा परम भाग्य ही कहा जाना चाहिए। अब मेरी जिन्दगी बची ही कितनी है!"

अन्तत: चाय खत्म कर न्यायालय में जाने के लिए चल पड़ने से पहले, धोंडोपन्त की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, "धोंडू, तुम न्यायालय मत आना। तुम रो पड़ोगे। और यह मुझसे बरदाश्त नहीं होगा।"

"जी नहीं। मैं वहाँ रहूँगा और अवश्य रहूँगा। मैं अकेला ही तो हूँ घर का आदमी। मुझे मना मत कीजिए। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं बिलकुल नहीं रोऊँगा।" बलवन्तराव के सामने इतने जोरदार शब्दों में शायद पहली बार वह बोले थे।

बलवन्तराव ने स्थिर निगाहों से उनकी ओर देखा। "ठीक है। इतनी तुम्हारी इच्छा है तो आ जाओ। किसी बात का दृढ़ निश्चय कर लेने पर मनोनिग्रह दिखाना असम्भव तो नहीं।"

नौ बजकर बीस मिनट पर ज्यूरी के सदस्य न्यायालय में फिर से लौट आये।

न्यायालय में सन्नाटा छाया हुआ था। लग रहा था कि कोई किसी का गला घोंट रहा है। गैस-बत्ती की पीली रोशनी इतने बड़े हाल में दीये की लौ की तरह दिखाई पड़ रही थी।

न्यायमूर्ति ने ज्यूरी के सदस्यों से पूछा, "आप सर्वानुमति से फैसला सुनाएँगे या अलग-अलग?"

फोरमन ने जवाब दिया, "अलग-अलग।"

"इसका विभाजन कैसे किया आपने? इसका क्या आधार रहा?"

"तीनों आरोपों के बारे में हम सातों सहमत हैं कि मिस्टर तिलक अपराधी हैं। और इन तीनों आरोपों के सम्बन्ध में हममें से दो लोग बलवन्तराव को बेकसूर मानते हैं।"

न्यायमूर्ति ने पूछा, "आप फिर एक बार सम्मिलित रूप से विचार-विमर्श करें तो क्या सर्व-सम्मति होना सम्भव है?"

"हरगिज नहीं।"

"तो फिर मुझे भी विधिवत् अपना फैसला सुनाना ही पड़ेगा कि ज्यूरियों का निर्णय मुझे मंजूर है।"

न्यायालय की शान्ति भंग हुई, मानो शीशा गिरकर टूट गया हो। अन्तत: सज़ा सुनाने से पहले न्यायमूर्ति ने लोकमान्य तिलक से कहा, "आपको कुछ कहना है? आप चाहें तो अपनी बात कह सकते हैं।"

लोकमान्य तिलक ने शान्त, संयत भाव से कहा, ''मैं तो सिर्फ यही कहना चाहता हूँ कि ज्यूरी का निर्णय विपरीत है और मैं बेकसूर हूँ। इनसानों और राष्ट्रों के भविष्य को नियन्त्रित करने वाली शक्तियाँ हैं, जो इस न्यायालय से श्रेष्ठतर हैं। शायद उस परमात्मा का ही यह संकेत हो कि आजाद रहने के बजाय जेल में रहकर ही मैं अपने कार्य को नयी दिशा दूँ।''

न्यायालय में बैठे सभी लोगों को लगा मानो उन्हें किसी ने बिजली का तार छुआ दिया हो। इस कदर धीरज और ध्येयनिष्ठा को सामान्य नहीं, अति-मानवीय ही कहा जाना चाहिए।

उसके बाद जस्टिस दावर ने छह साल काला पानी और नकद रुपये 1000/- की सजा सुनायी और वे तुरन्त वहाँ से उठकर चले गये।

गोरे पुलिस वाले तैयार खड़े थे। उन्होंने बलवन्तराव को तुरन्त अपने कब्जे में कर लिया। और उन्हें मुख्य जीने से ले जाने के बजाय, एक छोटे जीने से उच्च न्यायालय के पिछवाड़े ले जाया गया।

उस छोटे जीने से बलवन्तराव नीचे उतर रहे थे तो जस्टिस दावर के वकील-पुत्र उसी जीने से ऊपर आ रहे थे। अपने पिता के घर लौटने में देर होने का कारण जानने के लिए ही वे आये थे।

लोकमान्य तिलक को पुलिस पहरे में नीचे उतरते हुए देखकर शरमिन्दगी से उन्होंने मुँह फेर लिया।

लोकमान्य तिलक को उन पर तरस आया। उन्होंने दो मिनट बात करने की अनुमति पुलिस से माँगी और थोड़ा-सा आगे बढ़कर उन्होंने बैरिस्टर दावर से कहा, ''आप क्यों व्यर्थ ही शरमिन्दा हो रहे हैं! कनिष्ठ न्यायालय में आपने तो भरसक कोशिश की थी, लेकिन मुझे पता है कि उच्च न्यायालय में आपको यह सम्भव क्यों नहीं हुआ। आपकी स्थिति ही बड़ी पेचीदा थी। खैर, छह साल ज्यादा तो नहीं होते। अभी बीत जाएगा यह समय और हम फिर से मिलेंगे।''

लोकमान्य तिलक सीढ़ियाँ उतरने लगे और बैरिस्टर दावर उनकी पृष्ठाकृति को हैरत से देखते रहे। उन्हें लगा जैसे उनका शक्तिपात हो गया है। उनका गला रुँध गया और आँखें छलछला आयीं।

उच्च न्यायालय के पश्चिमी दरवाजे के पास गाड़ी खड़ी थी। उसमें बलवन्तराव को बिठाया गया और वह बी.बी.सी.आई. रेलवे के कुलाबा स्टेशन की ओर सरपट दौड़ने लगी। वहाँ एक विशेष रेलगाड़ी तैयार खड़ी थी। बलवन्तराव को उसमें बिठाते ही वह चल पड़ी। उसके गन्तव्य का पता तो बलवन्तराव के प्रहरियों को भी नहीं था।

गाड़ी चल पड़ते ही बलवन्तराव आराम से लेट गये और कुछ ही देर में सो भी गये।